सीता राम गोयल

बनाम

म्यूनिसिपल बोर्ड, कानपुर और अन्य

(न्यायाधीश एस.आर.दास, सी.जे. भगवती, एस.के.दास, जे.एल. कपूर

और सुब्बा राव)

सीमांकन - नगर निगम बोर्ड द्वारा कर्मचारी को बर्खास्त करना-सरकार को अपील का खंडन-अपील के निपटारे के बाद बर्खास्तगी के आदेश के खिलाफ मुकदमा-सीमा की अवधि-यू. पी. नगरपालिका अधिनियम, 1916 (1916 का उत्तर प्रदेश 2), धाराएँ 58, 69, 326।

अपीलकर्ता को 5 मार्च, 1937 को नगर निगम बोर्ड, कानपुर द्वारा पर्यवेक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था और 19 मार्च, 1951 तक अपनी सेवा में जारी रखा, जब 5 मार्च, 1951 को बोर्ड द्वारा पारित प्रस्ताव की एक प्रति उन्हें सौंपी गई, जिसमें उन्हें सेवा से बर्खास्त करने की बात कही गई थी। 7 अप्रैल, 1951 को उन्होंने सेवा से बर्खास्तगी के आदेश के विरुद्ध सरकार के समक्ष अपील दायर की, लेकिन 8 अप्रैल, 1952 को उन्हें सूचित किया गया कि उनकी अपील खारिज कर दी गई है। इसके बाद 8 दिसंबर, 1952 को अपीलकर्ता ने विभिन्न आधारों पर बर्खास्तगी आदेश की वैधता को चुनौती देते हुए एक मुकदमा दायर किया और सवाल उठा कि क्या मुकदमा समय के भीतर था। उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1916 की धारा 326 की उपधारा (1) में प्रावधान है कि बोर्ड के कार्यालय में स्पष्ट रूप से लिखित नोटिस छोड़े जाने के अगले दो महीने की समाप्ति तक नगर निगम बोर्ड के खिलाफ कोई मुकदमा शुरू नहीं किया जाएगा। कार्रवाई का कारण और उपधारा (3) बताते

हुए कहा गया है कि "कोई भी कार्रवाई, जैसा कि उपधारा (1) में वर्णित है, कार्रवाई के कारण की पुष्टि के बाद अगले छह महीने के भीतर शुरू नहीं की जाएगी"। अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि कार्रवाई का कारण उन्हें 8 अप्रैल, 1952 को मिला, जब सरकार को उनकी अपील को खारिज करने का आदेश उन्हें सूचित किया गया था और उस तारीख के आठ महीने के भीतर दायर किया गया मुकदमा समय के भीतर था। और अधिनियम की धारा 69 के साथ पठित धारा 58 (1) और (2) के प्रावधानों पर भरोसा किया, जो बोर्ड द्वारा बर्खास्त किए गए अधिकारी को बर्खास्तगी का आदेश की सूचना के 30 दिनों के भीतर सरकार से अपील करने का अधिकार देता है।

यह अभिनिर्धारित किया गया कि यद्यपि बोर्ड द्वारा 5 मार्च, 1951 को पारित आदेश सरकार को अपील करने के अधिकार के अधीन था, लेकिन आदेश का संचालन केवल अपील दायर करने से निलंबित नहीं किया गया था, और आदेश 19 मार्च, 1951 से प्रभावी हो गया, जब इसे अपीलार्थी को सूचित किया गया था। इसका कारण इसलिए उस तारीख को उनके खिलाफ कार्रवाई की गई और 8 दिसंबर, 1952 को उनके द्वारा दायर किए गए मुकदमे को धारा 326 यू.पी. नगरपालिका अधिनियम, 1916 तहत सीमा द्वारा प्रतिबंधित कर दिया गया था।

सिविल अपीलीय अधिकारिता : सिविल अपील सं. 149/1958।

1953 के दीवानी मुकदमा संख्या 257 में कानपुर के प्रथम अतिरिक्त दीवानी न्यायाधीश के 30 जुलाई, 1956 के फैसले और आदेश से उत्पन्न 1956 की पहली अपील संख्या 474 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के 2 सितंबर, 1957 के फैसले और आदेश से विशेष अनुमति द्वारा अपील।

व्यक्तिगत रूप से अपीलार्थी।

प्रतिवादी संख्या एक के लिए, सी.बी. गुप्ता, जी.सी. माथुर और सी.पी. लाल।

जी.सी. माथुर और सी.पी. लाल, प्रतिवादी संख्या 4 के लिए।

19 अगस्त, 1958।

न्यायालय का निर्णय न्यायाधीश भगवती द्वारा दिया गया था।

संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत विशेष अनुमति के साथ यह अपील सीमा का एक दिलचस्प सवाल उठाती है।

अपीलार्थी को नगर निगम बोर्ड, कानपुर द्वारा 5 मार्च, 1937 को लोक स्वास्थ्य विभाग, लखनऊ के अधीक्षण अभियंता की मंजूरी से एक पर्यवेक्षक नियुक्त किया गया था। बोर्ड के 2 जुलाई, 1938 के विशेष प्रस्ताव द्वारा उनकी पुष्टि की गई और 19 मार्च, 1951 तक वे कार्यरत रहे, जब बोर्ड द्वारा 5 मार्च, 1951 को पारित प्रस्ताव संख्या 1723 की एक प्रति, जिसमें उन्हें नौकरी से बर्खास्त करने का तात्पर्य था, उन्हें सौंप दी गई। 5 मार्च, 1951 के उक्त प्रस्ताव के खिलाफ, अपीलार्थी ने 7 अप्रैल, 1951 को उत्तर प्रदेश सरकार को एक अपील दायर की, लेकिन 7 अप्रैल, 1952 के एक सरकारी आदेश द्वारा सूचित किया गया कि उनकी अपील खारिज कर दी गई है। यह जानकारी उन्हें 8 अप्रैल, 1952 को मिली थी। इसके बाद 8 दिसंबर, 1952 को अपीलकर्ता ने मुकदमा दायर किया, जिसमें से वर्तमान अपील उत्पन्न होती है, अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश, कानपुर की अदालत में 1953 का मुकदमा संख्या 257, जिसमें नगर निगम बोर्ड, कानपुर, श्री एस. बी. गुप्ता, नगर अभियंता, श्री ब्रह्मानंद मिश्रा, नगर बोर्ड के तत्कालीन अध्यक्ष और उत्तर प्रदेश सरकार को प्रतिवादी के रूप में शामिल किया गया और अपने खिलाफ पारित बर्खास्तगी आदेश की वैधता को

इस आधार पर चुनौती दी कि अधीक्षण अभियंता, सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग की पूर्व मंजूरी नियमों द्वारा आवश्यक रूप से नहीं ली गई थी, कि अपीलकर्ता को बोर्ड द्वारा व्यक्तिगत रूप से सुनवाई के अवसर से वंचित कर दिया गया था, कि बोर्ड द्वारा उसे बर्खास्तगी की प्रस्तावित सजा के लिए कोई कारणदर्शक नोटिस जारी नहीं किया गया था और न ही किया गया था। अपीलकर्ता ने यह घोषित करने के लिए प्रार्थना की कि उसकी बर्खास्तगी का आदेश नियम विरुद्ध, अवैध और शून्य है और उसने क्षतिपूर्ति, स्थानापन्न कार्य करने के लिए भत्ते, बोनस, वेतन के बकाया और भविष्य निधि के संबंध में कुल 10,951 रुपये की राशि का दावा किया। मुकदमे का मुख्य रूप से बोर्ड द्वारा विरोध किया गया था और इसका बचाव इस प्रभाव से था कि बर्खास्तगी के आदेश को अवैधता या अनियमितता के आधार पर दूषित नहीं किया गया था और किसी भी मामले में मुकदमे को सीमा से रोक दिया गया था।

विचारण न्यायालय ने पाया किः -

(ए) कि अपीलार्थी की मूल नियुक्ति एक पर्यवेक्षक की थी न कि जल निकासी पर्यवेक्षक की, जैसा कि दावा किया गया है और उसकी बर्खास्तगी के लिए लोक स्वास्थ्य विभाग, लखनऊ के अधीक्षण अभियंता की मंजूरी आवश्यक नहीं थी।

(बी) कि अपीलार्थी को बर्खास्त करने का आदेश इस आधार पर अधिकार से बाहर था कि उसे बोर्ड द्वारा व्यक्तिगत रूप से सुने जाने का अवसर नहीं दिया गया था।

(सी) बोर्ड द्वारा प्रस्तावित सजा के खिलाफ कारण बताने के लिए कोई नोटिस जारी नहीं किया गया था।

(डी) कि बर्खास्तगी का आदेश कुछ आधारों पर आधारित था जो आरोप का विषय नहीं थे और बोर्ड का अध्यक्ष अपीलार्थी पर मुकदमा चलाने के लिए सक्षम नहीं था; लेकिन

(ई) कि अपीलार्थी का मुकदमा सीमा द्वारा वर्जित था। तदनुसार निचली अदालत ने खर्च के साथ मुकदमे को खारिज कर दिया।

अपीलार्थी ने इलाहाबाद में उच्च न्यायालय के समक्ष 1956 की प्रथम अपील संख्या 474 के रूप में एक अपील की और तर्क दिया कि बोर्ड के खिलाफ उनके द्वारा दायर किया गया मुकदमा सीमा के भीतर था। अपीलार्थी ने यू.पी. नगरपालिका अधिनियम (1916 का यू.पी. II) (इसके बाद "अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 326 के प्रावधानों पर भरोसा किया और तर्क दिया कि धाराओं की उप धारा (3) द्वारा छह महीने की अवधि पर विचार किया गया है। 326 और धारा 326 की उप-धारा (1) के तहत बोर्ड के खिलाफ मुकदमा दायर करने के लिए नोटिस देने के लिए आवश्यक दो महीने की अवधि, यानी 8 महीने की गणना 8 अप्रैल, 1952 से की जानी चाहिए, जिस तारीख को यू.पी. सरकार द्वारा उनकी अपील को खारिज करने का आदेश उन्हें सूचित किया गया था, न कि 5 मार्च, 1951 से, जब बोर्ड द्वारा उन्हें बर्खास्त करने का आदेश पारित किया गया था या 19 मार्च, 1951 से, जब बोर्ड द्वारा उन्हें बर्खास्त करने का आदेश सूचित किया गया था।

उच्च न्यायालय की राय थी कि बोर्ड द्वारा पारित 5 मार्च, 1951 का प्रस्ताव तुरंत प्रभावी हो गया क्योंकि यह एक ऐसा आदेश था जो अपने आप में पूर्ण और प्रभावी था और इसके संचालन को किसी और अवधि के लिए स्थगित नहीं किया गया था और न ही इसका प्रभाव तब तक निलंबित किया गया था जब तक कि राज्य सरकार अपील में आदेश पारित नहीं कर देती थी। तदनुसार यह इस निष्कर्ष

पर पहुंचा कि अपीलार्थी का मुकदमा अधिनियम की धारा 226 के तहत सीमा द्वारा वर्जित था। उक्त निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय ने पक्षों के बीच के मुद्दे पर किसी अन्य प्रश्न पर ध्यान नहीं दिया, लेकिन लागत के साथ अपील को खारिज कर दिया।

अपीलार्थी द्वारा इस न्यायालय में अपील करने की अनुमति के लिए प्रमाण पत्र के लिए दायर एक आवेदन निष्फल साबित हुआ, जिसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के इस फैसले के खिलाफ अपील करने के लिए इस न्यायालय से विशेष अनुमति के लिए आवेदन किया और प्राप्त किया।

इस अपील में हमारे निर्धारण के लिए जो एकमात्र सवाल उठता है वह यह है कि क्या अपीलार्थी के मुकदमे को सीमा द्वारा वर्जित किया गया था, क्योंकि यदि यह अपीलार्थी के खिलाफ निर्धारित किया जाता है तो यह इस अपील का निर्णायक होगा।

अधिनियम की धारा 326 इस प्रकार हैः

> "326 (1) बोर्ड के खिलाफ या बोर्ड के किसी सदस्य, अधिकारी या कर्मचारी के खिलाफ उसकी या उसकी आधिकारिक क्षमता में किए गए या किए जाने का तात्पर्य रखने वाले किसी कार्य के संबंध में कोई मुकदमा तब तक नहीं चलाया जाएगा जब तक कि बोर्ड के मामले में लिखित नोटिस के बाद अगले दो महीने की समाप्ति नहीं हो जाती है, और किसी सदस्य, अधिकारी या कर्मचारी के मामले में, उसे कार्रवाई का कारण, मांगी गई राहत की प्रकृति, दावा की गई मुआवजे की राशि और इच्छुक वादी के निवास का नाम और

स्थान स्पष्ट रूप से बताते हुए उसे उसके कार्यालय या निवास स्थान पर सौंप दिया जाता है या छोड़ दिया जाता है और शिकायत में एक बयान होगा कि ऐसी सूचना इस तरह से दी गई है या छोड़ दी गई है।

(2) .....

(3) उप-धारा (1) में वर्णित कोई भी कार्रवाई, जब तक कि यह अचल संपत्ति की वसूली या उसके स्वामित्व की घोषणा के लिए कोई कार्रवाई नहीं है, कार्रवाई के कारण के संचय के बाद अगले छह महीने के भीतर के अलावा अन्यथा शुरू नहीं की जाएगी। ....."

प्रथम दृष्टया उपरोक्त धारा 326 (3) में प्रदान की गई छह महीने की अवधि कार्रवाई के कारण के संचय के बाद चलने लगेगी और जिस कार्रवाई के कारण अपीलार्थी अदालत के समक्ष आया था, वह बोर्ड द्वारा उसे नौकरी से गलत तरीके से बर्खास्त करना था। यहां तक कि इस अवधि को दो महीने के लिए बढ़ाने से भी, धारा 326 (1) के तहत नोटिस की अपेक्षित अवधि अपीलार्थी को सीमा की सीमा से नहीं बचा पाएगी क्योंकि उसने 5 मार्च, 1951 के प्रस्ताव के आठ महीने से अधिक समय बाद अपना मुकदमा दायर किया था, जिसमें उसे नौकरी से बर्खास्त करने के बारे में सूचित किया गया था। इसलिए, अपीलार्थी ने विशेष रूप से अधिनियम की धारा 58 (1) और (2) के प्रावधानों पर भरोसा किया और आग्रह किया कि 8 अप्रैल, 1952 को जब उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा उनकी अपील को खारिज करने का आदेश उन्हें सूचित किया गया था, तब उन्हें कार्रवाई का कारण प्राप्त हुआ था और इसलिए 8 दिसंबर, 1952 को दायर किया गया मुकदमा समय के भीतर था।

अधिनियम की धारा 69 जो अपीलार्थी पर लागू होती है, निम्नानुसार हैः

"एक बोर्ड, विशेष प्रस्ताव द्वारा, एक कार्यकारी अधिकारी की सजा या बर्खास्तगी के संबंध में धारा 58 में निर्धारित शर्तों के अधीन धारा 68 के तहत नियुक्त किसी भी अधिकारी को दंडित या बर्खास्त कर सकता है।"

धारा 58 (1) और (2) में निम्नलिखित प्रावधान हैंः

"धारा 58 (1): एक बोर्ड अपने कार्यकारी अधिकारी को सजा या बर्खास्तगी के आदेश के बारे में राज्य सरकार को सूचित करने के 30 दिनों के भीतर राज्य सरकार को अपील करने के उसके अधिकार के अधीन, बोर्ड का गठन करने वाले कम से कम दो तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित एक विशेष प्रस्ताव द्वारा दंडित, बर्खास्त या हटा सकता है।

(2) राज्य सरकार उप-धारा (1) के तहत अपील के निर्णय तक कार्यकारी अधिकारी को निलंबित कर सकती है और बोर्ड के आदेश की अनुमति, अस्वीकृति या परिवर्तन कर सकती है।"

अपीलार्थी द्वारा इन प्रावधानों के बल पर यह तर्क दिया गया था कि बोर्ड द्वारा पारित विशेष प्रस्ताव उसे सूचित किए जाने के 30 दिनों के भीतर राज्य सरकार को अपील करने के उसके अधिकार के अधीन था और निर्दिष्ट अवधि के भीतर उसके खिलाफ अपील दायर करने की स्थिति में, प्रस्ताव को स्थगन में रखा गया था और राज्य सरकार द्वारा अपील के निर्णय तक लागू नहीं हुआ था। यदि ऐसा था, तो उन्होंने तर्क दिया कि बोर्ड द्वारा उनकी गलत बर्खास्तगी उस तारीख से लागू हो गई

जब राज्य सरकार के निर्णय के बारे में उन्हें सूचित किया गया था और यह वह तारीख थी जिस पर उन्हें गलत तरीके से बर्खास्त करने के संबंध में कार्रवाई का कारण प्राप्त हुआ था, जिसके परिणामस्वरूप इस तरह के संचार के 8 महीने के भीतर (2 महीने के नोटिस की अवधि सहित) उनके द्वारा दायर मुकदमा समय के भीतर था। उन्होंने धारा 58 (2) के प्रावधानों पर भरोसा करते हुए भी इस स्थिति का समर्थन किया, जो राज्य सरकार को अपील के निर्णय तक कर्मचारी को निलंबित करने का अधिकार देता है, यह तर्क देते हुए कि राज्य सरकार में निहित ऐसी शक्ति यह मानती है कि बर्खास्तगी का आदेश भले ही धारा 58 (1) में निर्दिष्ट शर्तों के अनुसार वैध रूप से पारित किया गया हो, तब तक प्रभावी नहीं होगा जब तक कि ऐसा निर्णय नहीं लिया जाता है, क्योंकि केवल ऐसी स्थिति में राज्य सरकार अपील के निर्णय तक निलंबन का आदेश पारित करने की स्थिति में होगी। यदि बोर्ड द्वारा पारित बर्खास्तगी का आदेश इस तरह के विशेष प्रस्ताव के पारित होने पर तुरंत लागू होना था, तो राज्य सरकार को उस अधिकारी को निलंबित करने का अधिकार होने का कोई मतलब नहीं होगा जिसे पहले ही बर्खास्त कर दिया गया था और उस ओर से प्रावधान तब निरर्थक होगा। इसलिए, यह तर्क दिया गया कि राज्य सरकार में निहित ऐसी शक्ति में अनिवार्य रूप से यह परिणाम शामिल है कि बर्खास्तगी का आदेश अपने बल द्वारा संचालित नहीं किया जा सकता है, लेकिन जब तक कर्मचारी द्वारा निर्दिष्ट अवधि के भीतर आदेश के खिलाफ अपील दायर की जाती है, तब तक अपील का निर्णय नहीं हो जाता है।

धारा 58 (1) और (2) के प्रावधानों को स्पष्ट रूप से पढ़ने पर, हमारी राय है कि अपीलार्थी का यह तर्क मान्य नहीं है। बोर्ड द्वारा दिए गए बर्खास्तगी के आदेश की वैधता की एक शर्त यह है कि उस ओर से विशेष प्रस्ताव का समर्थन बोर्ड का

गठन करने वाले कम से कम दो तिहाई सदस्यों द्वारा किया जाना चाहिए। एक बार उस शर्त को पूरा करने के बाद बोर्ड द्वारा और कुछ नहीं किया जाना है और एकमात्र अधिकार जो बोर्ड द्वारा इस प्रकार से निपटने वाले अधिकारी को प्राप्त होता है, वह है उस आदेश के संचार के 30 दिनों के भीतर राज्य सरकार को अपील करना। वह अपील के इस अधिकार का प्रयोग करने का विकल्प चुन सकता है या उस प्रक्रिया को अपनाए बिना वह कानून में उसके लिए उपलब्ध किसी भी आधार पर प्रस्ताव की वैधता को सीधे चुनौती दे सकता है, जैसे कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन न करना आदि। धारा 58 (1) के प्रावधानों में उन्हें ऐसा करने से रोकने के लिए कुछ भी नहीं है और यदि अपील के इस अधिकार का प्रयोग किए बिना, जो उन्हें क़ानून द्वारा दिया गया है, उन्होंने सिविल कोर्ट में ऐसे प्रस्ताव के अधिकार या अवैध चरित्र को स्थापित करने के लिए एक मुकदमा दायर किया है, तो यह आग्रह नहीं किया जा सकता है कि ऐसा मुकदमा समय से पहले था, क्योंकि उन्होंने क़ानून के तहत उन्हें दिए गए उपायों को समाप्त नहीं किया था। यह सिद्धांत कि उच्च न्यायालय अपने विवेक से विशेषाधिकार रिट जारी नहीं कर सकते हैं, जब तक कि आवेदक विशेष अधिनियम के तहत अपने सभी उपायों को समाप्त नहीं कर लेता है, किसी मुकदमे पर लागू नहीं होता है। धारा 58 (1) में ऐसा कुछ भी नहीं है जो स्पष्ट रूप से या निहित रूप से उसके वाद के अधिकार को बाधित करता हो। उपरोक्त धारा 58 (2) में निहित प्रावधान भी उन्हें इस साधारण कारण से मदद नहीं करेंगे कि अपील के निर्णय के लंबित रहने तक किसी कर्मचारी को निलंबित करने की राज्य सरकार में निहित शक्ति को शायद ही बोर्ड के आदेश की शर्त कहा जा सकता है। किसी भी स्थिति में, वह शक्ति राज्य सरकार को उस कर्मचारी को राहत देने के लिए दी जाती है जिसने बोर्ड द्वारा उसके खिलाफ पारित बर्खास्तगी के आदेश की कठोरता के

खिलाफ इस प्रकार अपील की है। कर्मचारी को बोर्ड द्वारा बर्खास्त किया जा सकता है, जिस मामले में मामले के प्रथम दृष्टया पहलू को देखने पर राज्य सरकार इस निष्कर्ष पर भी आ सकती है कि बर्खास्तगी के आदेश के संचालन पर रोक लगाई जा सकती है और उसे इसके बजाय निलंबित किया जा सकता है, इस प्रकार वह अपील के लंबित रहने के दौरान निर्वाह भत्ते का हकदार हो जाता है। यदि अपील अंततः खारिज कर दी जाती है तो बोर्ड द्वारा बर्खास्तगी का आदेश कायम रहेगा; यदि अपील की अनुमति दी जाती है तो वह नौकरी में बने रहने और इस तरह के रोजगार के सभी लाभों और विशेषाधिकारों का आनंद लेने का हकदार होगा, लेकिन उसे उस अवधि के दौरान भूख से नहीं रहना पड़ेगा जब अपील राज्य सरकार के समक्ष लंबित थी। धारा 58 (2) के प्रावधानों को धारा 58 (1) के प्रावधानों के साथ पढ़ा जाना चाहिए और यह आग्रह नहीं किया जा सकता है कि राज्य सरकार में निहित निलंबन की शक्ति का उपयोग बोर्ड द्वारा कर्मचारी को बर्खास्त करने या हटाने के अलावा किसी अन्य मामले में किया जाए। किसी भी अन्य सजा के मामले में राज्य सरकार द्वारा अपील के निर्णय के लंबित रहने तक निलंबन के आदेश का मतलब केवल यह होगा कि अपील के लंबित रहने के दौरान राज्य सरकार को बोर्ड द्वारा पहले से दी गई सजा से अधिक सजा देने का अधिकार है। इस तरह की बेतुकी स्थिति के बारे में विधायिका कभी नहीं सोच सकती थी और धारा 58 (1) को धारा 58 (2) के साथ सुसंगत रूप से पढ़ने का एकमात्र तरीका यह है कि राज्य सरकार में निहित निलंबन की इस शक्ति को केवल उन मामलों में लागू किया जाए जहां बोर्ड द्वारा कर्मचारी को निलंबन से अधिक सजा दी गई है। धारा 58 (2) केवल उन शक्तियों को निर्धारित करती है जिनका प्रयोग राज्य सरकार बोर्ड के आदेश के खिलाफ कर्मचारी द्वारा दायर अपील के मामले में कर सकती है। केवल अपील दायर

करने से बोर्ड के आदेश को स्थगित करने या अपील के निर्णय तक इसके प्रभाव को स्थगित करने का प्रभाव नहीं पड़ता है। दूसरी ओर इस तरह के निर्माण में यह शामिल होगा कि भले ही बोर्ड द्वारा कर्मचारी को बर्खास्त करने या हटाने के लिए एक विशेष प्रस्ताव पारित किया गया था, लेकिन वह इस तरह से काम करना जारी रखेगा और अपनी अपील के निर्णय तक अपना वेतन लेगा, एक बार जब वह राज्य सरकार में एक अपील दायर करेगा। हम धारा 58 (1) और (2) में ऐसा कोई शब्द नहीं देखते हैं जो बोर्ड द्वारा पारित आदेश के संचालन को निलंबित कर दे या अपील दायर करने या लंबित होने के कारण इसे अप्रभावी बना दे।

वास्तव में उसी अधिनियम की धारा 61 (3) में विधायिका ने कार्यकारी अधिकारी के आदेशों से अपील के अधिकार पर विचार करते हुए ऐसी आकस्मिकता के लिए स्पष्ट रूप से प्रावधान किया है और अधिनियमित किया है कि जब निर्दिष्ट अवधि के भीतर अपील दायर की गई थी तो आदेश तब तक निलंबित रहेगा जब तक कि अपील का निर्णय नहीं हो जाता। इस प्रकार अधिनियम की धारा 58 (1) और धारा 61 (3) के प्रावधानों की तुलना यह दिखाने के लिए पर्याप्त है कि विधानमंडल द्वारा अधिनियम की धारा 58 (1) को अधिनियमित करते समय ऐसा कोई परिणाम अभिप्रेत नहीं था।

यू. पी. जिला बोर्ड अधिनियम (1922 का यू. पी. 10) की धारा 71 के परंतुक में अधिनियमित इसी तरह के प्रावधान का भी इस संदर्भ में उल्लेख किया जा सकता है। बोर्ड द्वारा किसी सचिव या शिक्षा अधीक्षक को बर्खास्त करने या दंडित करने की शक्तियों पर विचार करते समय विधायिका ने इसके लिए एक परंतुक अधिनियमित किया कि बोर्ड के सचिव या शिक्षा अधीक्षक को, यथास्थिति, प्रस्ताव के संचार की तारीख से एक महीने के भीतर ऐसे प्रस्ताव के खिलाफ राज्य सरकार

को अपील करने का अधिकार होगा, और यह कि प्रस्ताव तब तक प्रभावी नहीं होगा जब तक कि एक महीने की अवधि समाप्त नहीं हो जाती है या जब तक कि राज्य सरकार उसके द्वारा की गई किसी भी अपील पर आदेश पारित नहीं कर देती है। अधिनियम की धारा 58 में इस तरह के किसी भी प्रावधान की अनुपस्थिति से यह भी पता चलता है कि विधायिका द्वारा ऐसा कोई परिणाम नहीं चाहा गया था।

धारा 58 (1) का अधिनियमन जिस तरीके से किया गया है, कर्मचारी को बोर्ड के आदेश के बारे में सूचित किए जाने के 30 दिनों के भीतर केवल राज्य सरकार को अपील करने का अधिकार देता है, यह दिखाने के लिए पर्याप्त है कि न तो आदेश का निलंबन था और न ही विधानमंडल के विचार में कभी भी अपील दायर करने के परिणामस्वरूप इसके प्रभाव को स्थगित किया गया था।

पारित करते समय यह ध्यान दिया जा सकता है कि अपीलार्थी ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया था। बोर्ड, शाहजहांपुर बनाम कैलाशी नाथ (1), जिसने उनके तर्क के समर्थन में ऊपर निर्धारित उत्तर प्रदेश जिला बोर्ड अधिनियम की धारा 71 के निर्माण पर रोक लगा दी। हालाँकि, उस धारा के प्रावधान हमारे समक्ष अधिनियम की धारा 58 (1) के प्रावधानों से काफी अलग हैं और इस मामले को उच्च न्यायालय द्वारा अपील किए गए निर्णय में ठीक ही अलग किया गया था, क्योंकि वहां विचाराधीन धारा 71 की स्पष्ट शर्तों के अनुसार, बर्खास्तगी तब तक प्रभावी नहीं होने वाली थी जब तक कि एक महीने की अवधि समाप्त नहीं हो जाती थी या जब तक कि राज्य सरकार कर्मचारी द्वारा की गई किसी भी अपील पर आदेश पारित नहीं कर देती थी। इसलिए, यह स्पष्ट है कि भले ही बोर्ड द्वारा पारित आदेश कर्मचारी को दिए गए अपील के अधिकार के अधीन था, लेकिन आदेश का संचालन निलंबित नहीं किया गया था और न ही इसके प्रभाव को किसी भी तरह से

केवल अपील दायर करने से बाद की तारीख तक स्थगित किया गया था और यह उस तारीख से प्रभावी हो गया जब इसे कर्मचारी को सूचित किया गया था। इस तरह के संचार की तारीख पर कर्मचारी को उपार्जित कार्रवाई का कारण, यदि कोई हो और उस तारीख से सीमा की अवधि शुरू हो गई।

यदि अधिनियम की धारा 58 (1) और (2) के प्रावधानों के स्पष्ट निर्माण पर यह सही स्थिति है तो अन्य कौन सा सिद्धांत है जिसे अपीलार्थी अपने तर्क का समर्थन करने के लिए अपनी सहायता के लिए बुला सकता है? उन्होंने बोर्ड द्वारा पारित विशेष प्रस्ताव की तुलना निचली अदालत द्वारा पारित डिक्री और राज्य सरकार द्वारा अपील के निर्णय की तुलना अपीलीय अदालत द्वारा पारित डिक्री से करने की कोशिश की और आग्रह किया कि जिस तरह से निचली अदालत की डिक्री को अपीलीय अदालत द्वारा पारित डिक्री में मिला दिया गया और उसके बाद निचली अदालत की कोई डिक्री नहीं बची, उसी तरह राज्य सरकार द्वारा अपील के फैसले ने बोर्ड द्वारा पारित विशेष प्रस्ताव को बदल दिया और यदि उनके प्रतिकूल निर्णय से उन्हें कार्रवाई का कारण मिला और सीमा की अवधि उनके खिलाफ केवल उस डिक्री की तारीख से चलने लगी। तर्क यह था कि भले ही इस तरह की गलत बर्खास्तगी के संबंध में कार्रवाई का कारण उस तारीख को सामने आया जब बोर्ड का आदेश उन्हें सूचित किया गया था, एक बार जब उनके द्वारा उस आदेश के खिलाफ अपील दायर की गई थी, तो निर्धारित अवधि के भीतर कार्रवाई का कारण निलंबित कर दिया गया था और कार्रवाई के कारण में विलय कर दिया गया था जो राज्य सरकार द्वारा उनकी अपील के निर्णय पर उन्हें प्राप्त होगा। बोर्ड का विशेष प्रस्ताव तब अपील पर राज्य सरकार के निर्णय में विलय हो जाएगा और केवल एक चीज जो तब बची रहेगी वह राज्य सरकार का निर्णय होगा जिस पर या तो बोर्ड के आदेश के संचार

पर उसे प्राप्त हुई कार्रवाई के कारण को पुनर्जीवित या पुनर्जीवित किया जाएगा या कार्रवाई के एक नए कारण का संचय किया जाएगा जिसे उसके द्वारा शुरू होने वाली सीमा की अवधि के भीतर व्यक्त किया जा सकता है।

हालाँकि, अपीलार्थी के रास्ते में प्रारंभिक कठिनाई यह है कि विभागीय पूछताछ भले ही वे अपील या संशोधन पर निर्णयों में समाप्त होती हैं, लेकिन उन्हें नियमित न्यायालयों के समक्ष कार्यवाही के बराबर नहीं माना जा सकता है। जैसा कि इस न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद नूह (1) में कहा थाः

> ".....विभाग में एक अधिकारी द्वारा विभागीय जांच पर पारित बर्खास्तगी का आदेश और उससे अगली रैंक के एक अन्य अधिकारी द्वारा एक अपील को खारिज करने के लिए पारित आदेश और विभाग के प्रमुख द्वारा संशोधन के लिए एक आवेदन को खारिज करने के आदेश को शायद ही किसी औचित्य के साथ तुलना की जा सकती है जो सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत एक दीवानी मुकदमे में पहली बार के न्यायालय द्वारा की गई डिक्री और एक अपील अदालत द्वारा अपील को खारिज करने वाली डिक्री और एक उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण याचिका को खारिज करने का आदेश, क्योंकि पहली बार या अपील या संशोधन पर विभागीय न्यायाधिकरण कानून में प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा संचालित नियमित अदालतें नहीं हैं, हालांकि उनके पास कानून की अदालतों के जाल हो सकते हैं।"

अतः न्यायालयों के निर्णयों का सादृश्य अपीलार्थी के लिए शायद ही उपलब्ध होगा।

इस संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के तहत उत्पन्न होने वाले मामलों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया, जिसमें कहा गया है कि सीमा की अवधि की गणना मूल डिक्री की तारीख से की जानी है, जिसने पुनर्स्थापन के अधिकार को जन्म दिया है, न कि अंतिम अपील के निर्णय की तारीख से जो इसके खिलाफ दायर की गई थी। बी.के. की निम्नलिखित टिप्पणियों पर भरोसा रखा गया: भबद्रंजन दास बनाम निबारन चंद्रा मामले में मुखर्जी जस्टिस (जैसा कि वह तब थे)।

> "इसलिए जो प्रश्न वास्तव में निर्धारण के लिए आता है वह यह है कि क्या इस तरह के आवेदन के लिए समय की गणना अंतिम अपील के निर्णय की तारीख से की जानी चाहिए, या उस डिक्री से जो पहली बार अपीलार्थी को क्षतिपूर्ति के लिए आवेदन करने का अधिकार देती है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह स्वीकार किया जाता है कि उसे निस्संदेह उस समय क्षतिपूर्ति के लिए प्रार्थना करने का अधिकार था जब मुन्सिफ द्वारा निर्णय पारित किया गया था। उनका तर्क है कि उनके लिए पहले अवसर पर आवेदन करना आवश्यक नहीं था क्योंकि ट्रायल जज के उस फैसले के खिलाफ अपील की गई थी और वह अपीलीय अदालत का फैसला सुनाए जाने तक इंतजार कर सकते थे। अपीलीय न्यायालय द्वारा अपना निर्णय पारित करने के बाद निचली अदालत की डिक्री अब अस्तित्व में नहीं रहेगी और वह अपीलीय न्यायालय की डिक्री के आधार पर क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के अपने अधिकारों का हकदार होगा। मैं खुद को इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ पाता हूं। यदि पुनर्स्थापन के लिए आवेदन करने का अधिकार अपीलार्थी को

पहले न्यायालय द्वारा अपना निर्णय पारित करते ही उपलब्ध था, तो निश्चित रूप से अनुच्छेद 181 के तहत उस तारीख से समय चलना शुरू हो जाएगा और केवल यह तथ्य कि निर्णय को एक अपील के माध्यम से चुनौती दी गई थी, जो अंततः इसे दरकिनार कर सकती है, मेरे विचार में, समय को निलंबित करने का काम नहीं करता है। न ही अपीलीय अदालत की डिक्री जिसमें निचली अदालत की डिक्री का निस्संदेह विलय होगा, पक्ष को सीमा के लिए एक नया प्रारंभिक बिंदु देगा।"

निचली अदालत की डिक्री का अपील अदालत की डिक्री में विलय का सादृश्य स्पष्ट रूप से इन मामलों पर लागू नहीं होता है। रंकिनः मुख्य न्यायाधीश हरि मोहन बनाम परमेश्वर शौ (2) की टिप्पणियाँ भी सही हैं। विद्वान मुख्य न्यायाधीश ने पृष्ठ 78 पर कहा :-

"लेकिन धारा 144 के तहत किया जाने वाला आवेदन एक आवेदन है जिसे पहली बार की अदालत में किया जाना चाहिए कि क्या डिक्री उस अदालत या उच्च न्यायालय द्वारा पारित की गई थी। उस अदालत को यह निर्धारित करना होता है कि क्या आवेदक किसी भी और क्या लाभों का हकदार है, पुनर्स्थापन के माध्यम से या अन्यथा अपीलीय अदालत की डिक्री के कारण पिछली डिक्री को बदलते या उलटते हुए। हमें इस मामले को सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 181 के तहत निर्धारित करना होगा, जो हमें सामान्य भाषा में, उस तारीख का पता लगाने का निर्देश देता है जिस पर आवेदक का अधिकार अर्जित हुआ था। शब्दों के सामान्य और

स्वाभाविक अर्थ में, उनका अधिकार तुरंत प्राप्त हो गया, जिला न्यायाधीश ने निचली अदालत के फैसले को उलट दिया, और वादी के दावे की राशि को कम कर दिया। इसलिए, जब तक हमें मामले की प्रकृति के कारण उस निर्णय के प्रभाव को नजरअंदाज करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अपील पर इसकी पुष्टि की गई थी, मुझे ऐसा करना गलत लगता है। जब तक, इसलिए, हमें मामले की प्रकृति के कारण उस निर्णय के प्रभाव को नजरअंदाज करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मैं अपील पर पुष्टि करता हूं, मुझे ऐसा करना गलत लगता है। ऐसा करने से इनकार करने में यह प्रस्ताव शामिल नहीं है कि एक ही चीज़ के लिए दो फरमानों को एक साथ निष्पादित किया जा सकता है। न ही इसमें, जहाँ तक मैं देख सकता हूँ, किसी अन्य प्रस्ताव की पुष्टि शामिल है, जिसे असुविधाजनक या बेतुका माना जा सकता है।"

इसके अलावा, जब सादृश्य लागू होता है, जहां अपील अदालत की डिक्री केवल निचली अदालत के डिक्री की पुष्टि करती है, तो इस अदालत ने उत्तर प्रदेश बनाम मोहम्मद नूह (1) राज्य में फैसला सुनाया है कि निचली अदालत की मूल डिक्री लागू रहती है। इस अदालत ने पृष्ठ संख्या 611 पर कहा हैः -

"अगले स्थान पर, जबकि यह सच है कि पहली बार की अदालत की डिक्री को उससे अपील पर पारित डिक्री में या यहां तक कि संशोधन में पारित आदेश में भी विलय कहा जा सकता है, यह केवल कुछ उद्देश्यों के लिए ऐसा करता है, अर्थात्, बटुक नाथ बनाम मुन्नी देवी (2) में डिक्री के निष्पादन के लिए सीमा की

अवधि की गणना करने के उद्देश्यों के लिए, या जोवाद हुसैन बनाम गेंदा सिंह (3) में बंधक मुकदमे में अंतिम डिक्री के लिए आवेदन के लिए सीमा की अवधि की गणना करने के लिए। लेकिन जैसा कि सर लॉरेंस जेनकिंस ने जुस्कर्न बॉयड बनाम पीर्थीचंद लाल (4) में प्रिवी काउंसिल का निर्णय देते हुए कहा, भारतीय कानून और प्रक्रिया के तहत कानून की अन्य प्रणालियों के तहत सिद्धांत जो भी हो, एक मूल डिक्री को अपील की प्रस्तुति से निलंबित नहीं किया जाता है और न ही इसके संचालन में बाधा आती है जहां अपील पर डिक्री केवल बर्खास्तगी की होती है। भारतीय कानून में इस सुझाव का समर्थन करने के लिए कुछ भी नहीं है कि पहली बार की अदालत या न्यायाधिकरण की डिक्री या आदेश केवल अपील या संशोधन के माध्यम से सभी कार्यवाही की समाप्ति पर अंतिम हो जाता है। अपील या पुनरीक्षण दाखिल करने से डिक्री या आदेश खतरे में पड़ सकता है लेकिन जब तक इसे उलट या संशोधित नहीं किया जाता है तब तक यह प्रभावी रहता है।"

मूल डिक्री इस प्रकार क्रियाशील होने के कारण जिसका हम वास्तव में संबंध रखते हैं, वह संबंधित क़ानून में निर्धारित सीमा की अवधि का प्रारंभ है और यदि क़ानून यह निर्धारित करता है कि यह कार्रवाई के कारण के संचय की तारीख से शुरू होता है, तो इसे लागू करने के स्पष्ट अन्याय के बावजूद इन शब्दों के पीछे कोई नहीं है। जैसा कि माथु कोरक्कई चेट्टी बनाम मदार अम्मल (1) में न्यायाधीश शेषगीर अय्यर ने बताया थाः

"इसलिए मेरी राय में, न्यायिक समिति के इन विभिन्न निर्णयों से जो वास्तविक नियम निकाला जा सकता है, वह यह है कि सीमा अधिनियम में प्रदान की गई छूट, बहिष्करण, गणना के तरीके और देरी के बहाने आदि के अधीन, पहली अनुसूची के तीसरे कॉलम की भाषा की व्याख्या इस तरह की जानी चाहिए कि वह विधायिका के सच्चे इरादे को पूरा करे, अर्थात उस तारीख से कार्रवाई के कारण का निर्धारण करके जब उपाय पक्ष को उपलब्ध हो। "

वर्तमान मामले में कार्रवाई का कारण अपीलार्थी को उस समय प्राप्त हुआ जब बोर्ड का प्रस्ताव उसे सूचित किया गया था और वह सीमा शुरू होने की तारीख थी। उनकी गलत बर्खास्तगी के संबंध में बोर्ड के खिलाफ मुकदमा दायर करने का उपाय, यदि कोई हो, उस तारीख से उनके पास उपलब्ध था और अधिनियम की धारा 326 के तहत निर्धारित सीमा की अवधि के भीतर उस उपाय को आगे बढ़ाने के लिए उनके लिए खुला था।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि परिणाम अपीलार्थी के लिए दुर्भाग्यपूर्ण है, क्योंकि निचली अदालत ने गलत तरीके से बर्खास्तगी की उसकी याचिका के संबंध में उसके पक्ष में पाया। यदि उन्होंने अधिनियम की धारा 326 द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर ही मुकदमा दायर किया होता, तो उन्हें अदालत से कुछ राहत मिल सकती थी। हालांकि उन्होंने अपनी अपील पर राज्य सरकार के फैसले तक इंतजार करने का फैसला किया और अपने नुकसान के लिए समय की सीमा को पार कर लिया। हम किसी अन्य निष्कर्ष पर पहुंचने में असमर्थ हैं कि ऊपर पहुँचा गया और अपील, इसलिए, खारिज की जानी चाहिए; लेकिन मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में हम लागत के बारे में कोई आदेश नहीं देते हैंः

अपीलार्थी को एक अकिंचन के रूप में आगे बढ़ने की अनुमति दी गई थी और उसने इस अपील पर औपचारिक रूप से मुकदमा चलाया। वह अपील में विफल रहा है और हम आदेश देते हैं कि वह अदालत की फीस का भुगतान करेगा जो उसके द्वारा भुगतान किया जाता अगर उसे एक अकिंचन के रूप में अपील करने की अनुमति नहीं दी जाती। पंजीयक भारत के महान्यायवादी को उच्चतम न्यायालय के नियमों के आदेश XIV, आर 12 के अनुसार उसके द्वारा देय न्यायालय शुल्क का एक ज्ञापन भेजेगा।

अपील निरस्त के गयी।

यह अनुवाद आर्टिफ़िश्यल इंटेलिजेंस टूल "सुवास" के जरिये अनुवादक की सहायता से किया गया है ।

अस्वीकरण - इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाषा में कर सकेंगे एवं यह किसी अन्य प्रयोजन में काम नहीं ली जायेगी। सभी आधिकारिक एवं व्यवहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निष्पादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।